ब्रिटिष भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति : एक आलोचनात्मक अध्ययन।

धीरज कुमार,
शोध छात्र, इतिहास विभाग
बी0एन0एम0यू0, मधेपुरा
कायस्थ टोला, वार्ड नं0–28,
जिला–सहरसा।

भारत में विभिन्न कालों में विभिन्न संस्कृतियों का समावेशीकरण होता रहा है, जिसके कारण महिलाओं की स्थिति में विविध कालों में परिवर्त्तन होता रहा। वैसे भारतीय समाज में महिलाओं को प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। वैदिक काल में नारी को समाज में विशेष स्थान प्राप्त था तथा पुरूषों की भाँति उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में बराबरी का दर्जा प्राप्त था। वे राजनीतिक तथा सामाजिक कार्यो में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेती थीं और महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। उन्हें शिक्षा ग्रहण करने, स्वयंवर चुनने तथा गर्भधारण करने की स्वतंत्रता जैसी मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त थी। सम्पत्ति में भी साझा अधिकार प्राप्त था। ऋगवेद में ऐसे बहुत सी नारियों का उल्लेख है। इस प्रकार उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त था और निर्णय लेने की स्वतंत्रता थी।

कृषि कार्यो की स्थापना और स्थायी ग्रामीण जीवन की नींव में महिलाओं के आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के प्रमाण उपलब्ध हैं। धीरे–धीरे संस्कृतियों के विकास के साथ–साथ महिलाओं की प्राकृतिक संरचना, गर्भ–धारण जैसे बन्ध्यात्मक स्थितियों ने महिलाओं की भूमिका को काफी प्रभावित किया और महिलाओं को अर्थिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टि से पुरूषों पर निर्भरता को बढ़ाया जिससे पुरूषों की स्थिति समाज में निर्णायक होती गई और महिलाओं की स्थिति में निरंतर गिरावट आती गई और पुरूष वर्चस्वशाली होता गया और वह पत्नी के लिए देवता के समान पूजनीय हो गया। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि स्त्रियों को अपने पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए और इसे महिलाओं का सर्वोच्च कर्त्तव्य बताया गया है। धीरे–धीरे कन्या का जन्म कष्ट सूचक हो गया। महिलाओं के अधीन स्थिति को स्थापित करने की प्रक्रिया की शुरूआत 600 ई0पू0 से 300 ई0पू0 के वर्षो में चुका था। प्राचीन विधि निर्माता मनु ने स्थाई निर्भरता की व्यवस्था का विधान किया कि वह जीवन के विभिन्न चरणों में क्रमशः अपने पिता, पति और पुत्र से संरक्षण पाती है। इस प्रकार कालान्तर में महिलाओं पर वर्जनाओं और प्रतिबन्धों में कठोरता आती गई। मध्यकाल में विदेशी आक्रमणकारियों और इस्लामी संस्कृति के आगमन और उसके प्रभाव में कुछ अन्य वर्जनाओं की भी वृद्धि हुई, जिससे महिलाओं की स्थिति में तेजी से गिरावट आई। धर्म की रक्षा और महिलाओं की सुरक्षा को लेकर उनपर कई तरह के सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिए गए। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, देवदासी प्रथा तथा शिशु हत्या जैसी सामाजिक बुराईयों का प्रचलन तेजी से बढ़ा। सम्पत्ति के अधिकार को नकार दिया गया। रोमिला थापर का कहना है कि पर्याप्त अधिकार और स्वतंत्रता की स्थिति से लेकर उतनी ही अधीनता की स्थिति तक उसमें व्यापक परिवर्तन हुए।

<u>भारत में ब्रिटिश कम्पनी का आगमन एवं नवीन विचारों का उदय</u> :

1. **<u>सामाजिक क्षेत्र में</u>** :

1600 ई0 में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत में आगमन हुआ। कम्पनी द्वारा 1757 तक अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने एवं नकारात्मक व्यापार को अनुकूल करने की दिशा में काम किया गया। इस दौरान कम्पनी द्वारा भारत की सामाजिक स्थिति के संबंध में कोई व्यापक प्रयास नहीं किया गया। हालांकि कम्पनी के साथ धर्म प्रचार के उद्देश्य से आए हुए इसाई मिश्नरियों के द्वारा स्थानीय स्तर पर कुछ व्यक्तिगत पहलें की गई।

19वीं सदी के आरम्भ तक कम्पनी भारत में एक प्रभुसत्ता के रूप में स्थापित हो चुकी थी तथा 19वीं सदी में भारतीय महिलाओं की स्थिति ने पश्चिमी मानवशास्त्रियों, इसाई मिशनरियों एवं भारतीय सामाजिक–धार्मिक दार्शनिकों, विचारको, सुधारकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। फिर भी अपने शासन के आरंभिक काल में कम्पनी, सरकार में सामाजिक और धार्मिक मामले में उदारतापूर्ण तटस्थता की नीति अपनाई। 1813 तक कम्पनी ने भारतीय समाज की प्रथाओं एवं रीति रिवाजों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। उसने भारतीयों के सभी धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों, रीति रिवाजों एवं प्रथाओं के प्रति न केवल सहिष्णुता तथा उदारता का भाव दिखलाया, अपितु उनका सम्मान तक किया।

तकनीक के विकास और औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पन्न तकनीकी बदलाव ने महिलाओं की कार्य पद्धति में बदलाव एवं बढ़ती भूमिका को स्वीकार किया, जिसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। भारतीय सामाजिक–धार्मिक विचारकों ने भारत में व्याप्त सतीप्रथा, बालिका शिशु हत्या, दहेज प्रथा, बहु विवाह, विधवा पुनर्विवाह, देवदासी प्रथा आदि का विरोध करना आरंभ किया। इन्हें इसाई मिशनरियों के समर्थन से भी बल मिला। वाणिज्यक पूँजीवाद एवं औद्योगिक पूँजीवाद के कारण ब्रिटिश कम्पनी को भी अपने औपनिवेशिक हितों के रक्षार्थ अहस्तक्षेप की नीति का त्याग करते हुए हस्तक्षेप की नीति अपनाते हुए कई औपचारिक एवं अनौपचारिक कदम उठाना पड़ा।

19वीं0 सदी में भारतीय स्त्रियों की स्थिति के लिए दो सुधार आंदोलन हुए, दोनों वृहत समुदायों हिन्दू और मुसलमानों में चलें। एक था, पुनरूत्थानवादी आंदोलन, जिसका नेतृत्व रूढ़िवादी हिन्दू एवं मुस्लिम कर रहे थे, जिनका उद्देश्य प्राचीनकालीन व्यवस्था का महिमामंडन कर उसे नए रूप एवं नए कलेवर के साथ समाज में स्थापित करना था। दूसरा आधुनिकीकरण का अभियान जिसका नेतृत्व समाज का शिक्षित मध्यम वर्ग कर रहा था, इसके साथ भारतीय स्त्रियों के स्थिति के सुधार के लिए तीन समूह बनें। पहला अंग्रेज शासक, दूसरा भारतीय उदारवादी तथा तीसरा शिक्षित भारतीय स्त्रियाँ।

सती प्रथा उन क्षेत्रों में फिर से जोर पकड़ी जहाँ ब्रिटिश प्रशासन के अंतर्गत विकास की दर सबसे अधिक थी अर्थात् राजधानी कलकत्ता और आस–पास के जिलों में इसका प्रभाव बढ़ा। यहाँ यह प्रथा सवर्ण जातियों में ही नहीं बल्कि निचली एवं मझोली जातियों के उन किसान परिवारों मे भी लोकप्रिय थी, जो सामाजिक गतिशीलता प्राप्त कर चुके थे और फिर श्रेष्ठतर जातियों की नकल करके अपनी नई स्थिति वैध बनाना चाहते थे। इस समाज शास्त्रीय कारक के अलावा धार्मिक धारणा तथा रिश्तेदारों का लोभ/लालच मुख्य कारक थे। यह प्रथा उन क्षेत्रों में सबसे अधिक प्रचलित थी। जहाँ हिन्दू पारिवारिक विधान के दायभाग सम्प्रदाय का प्रचलन था, जिसमें पति की सम्पत्ति पाने का अपेक्षाकृत अधिक अधिकार विधवा को प्राप्त था अर्थात् इसमें सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक सभी कारण विधमान थे।

राजाराम मोहन राय जैसे सुधारकों के समर्थन में जिन्होंने सती प्रथा पर तीन विस्तृत पम्पलेट प्रकाशित किया था। ब्रिटिश कम्पनी ने 4 दिसम्बर 1829 को रेगुलेशन XVII के द्वारा सती प्रथा को बंगाल एवं दिनांक 2 फरवरी 1830 से मद्रास में प्रतिबन्धित कर दिया। इसे हिन्दू लिटरेरी सोसाईटी, ट्रिपलिकेन लिटरेरी सोसाईटी मद्रास, प्रगतिशील नागरिक समाज आदि ने स्वागत किया और इसे महिलाओं के हित में क्रान्तिकारी कदम बताया। इसके विपरित कुछ रूढ़िवादी हिन्दुओं के द्वारा गर्वनर जनरल को एक मेमोरेंडम 19 जनवरी 1930 को दिया गया और सती प्रथा को भारत की एक पवित्र प्रथा बताते हुए सती कानून को वापस लेने का अनुरोध किया गया और इसे सरकार की अहस्तक्षेप की नीति के विरूद्ध बताया। परन्तु समाज के एक बड़े समुह के समर्थन एवं निचले तबकों के इससे अप्रभावित रहने को देखते हुए सरकार ने सती प्रथा के विरूद्ध कानून को और कठोरता से लागू किया और इसे दण्डनीय अपराध बना दिया गया।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों के प्रति अन्याय अन्य कई मानसिक विकारों वाली विचारों की पोषक बाल विवाह के प्रति ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज के प्रयासों से प्रभावित होकर सरकार ने 1860 के IPC में 10 साल से कम उम्र के लड़कियों के विवाह को प्रतिबन्धित कर दिया। परन्तु केशवचन्द्र सेन एवं बहरामजी मालावारी ने इस आयु को कम बताते हुए इसे बढ़ाने हेतु किये गए प्रयास के फलस्वरूप "**नेटिव मैरिज एक्ट**" के द्वारा विवाह हेतु 13 साल लड़की और 16 साल लड़के की आयु निश्चित की गई। पत्नी पर उनके पति के दाम्पत्य अधिकारों पर सीमा लगाने का प्रयास करके इस प्रस्तावित सुधार ने उस क्षेत्र का अतिक्रमण किया जिसे अभी तक "**देशी पुरूषत्व**" के लिए अकेला शेष बचा स्वायत क्षेत्र माना जा रहा था।" बाल विवाह पर रोक से महिलाओं की स्थिति में सुधार आया।

ब्रिटिश सरकार ने मिशनरियों के दबाव में विवाह निबंधन कानून को भी लागू किया। जिसे 1852 में मद्रास प्रेसीडेंसी में विस्तारित किया गया। 1865 के एक्ट सं0 XXV एवं एक्ट सं0–V द्वारा विवाह निबंधन को विनियमित किया गया। परन्तु मिशनरी इतने से संतुष्ट नहीं हुई क्योंकि इनमें कुछ खामियां थी। जिनके कारण मिशनरियों को महिला कामगार नहीं मिल पा रही थी। इस हेतु उनके द्वारा बनाए गए पुनः दबाव में सरकार ने भारतीय क्रिश्चिन मैरिज एक्ट 1872 लागू किया। जिनके तहत

दोनों पक्षों की सहमति को आवश्यक बनाया गया। मिशनरियों के द्वारा किशोरावस्था के बाद विवाह के पक्ष में कई पम्पलेट और जागरूकता अभियान चलाया गया, जिस कारण भी इसमें काफी सहायता मिली।

एक महत्वपूर्ण समस्या विधवा पुनर्विवाह, जो बाल विवाह का एक दर्दनाक पहलू है के लिए 19वीं सदी के पूर्वाद्ध में प्रयास आंरभ हुए। 1855 में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में व्यापक अभियान चलाया। परन्तु राधाकान्त देव जैसे रूढ़िवादियों का उन्हें हर स्तर पर विरोध का सामना करना पड़ा। इसके बावजूद लार्ड डलहौजी ने 1856 में विधवा पुनर्विवाह एक्ट XV पारित कर विधवा पुनर्विवाह को वैद्यानिक दर्जा प्रदान किया। मिशनरियों ने भी विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिए विधवा पुनर्वास केन्द्र तथा विधवा पुनर्विवाह फंड, विधवा पेंशन, विधवा रोजगार जैसे कार्यक्रमों की शुरूआत की तथा विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में व्यापक प्रौपगेंडा एंव आम सहमति स्थापित करने में भी काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। पश्चिम भारत में विधवा पुनर्विवाह के लिए विष्णुशास्त्री पंडित ने 1866 में एक संगठन बनाया एवं उसका व्यापक प्रचार प्रसार किया। विधवा विवाह के संबंध में दक्षिण भारत में विरसेलिंग पुटुलु ने विधवा पुनर्विवाह ऐसोसिएशन 1874 तथा नागरकाईल ने 1873 में हिन्दू पुनर्विवाह सोसाईटी की स्थापना की। साथ ही उच्चवर्गीय हिन्दुओं में विधवा पुनर्विवाह को प्रेरित करने के लिए विमेन्स रिमैरिज एसोसिएशन की स्थापना 1882 में मद्रास में की गई। इससे समाज के विधवा पुनर्विवाह के प्रति जागरूकता पैदा हुई।

परन्तु इन प्रयासों के बावजूद विधवा पुनर्विवाह के क्षेत्र में पूर्ण सफलता हाथ नहीं आयी और यह छिटपुट उदाहरण के रूप में समाज में स्थापित रहा। परन्तु बड़े स्तर पर इनका प्रभाव समाज में नहीं देखा गया। सुज कैराल का तर्क है कि **यह कानून बुनियादी तौर पर रूढ़िवादी था, क्योंकि पुनर्विवाह के बाद एक विधवा का स्वर्गीय पति की सम्पत्ति में भागीदारी नहीं रहती थी। इसतरह इस कानून में केवल "पवित्र साध्वी" विधवा को पुरस्कृत करने का ब्राह्मणवादी नियम का अनुमोदन किया गया।** विद्यासागर के जीवनी लेखक अशोक सेन ने इसे एक "**अपरिहार्य पराजय**" कहा है। जिस सामाजिक सहमति की पूर्व प्रेक्षा विधवा पुनर्विवाह में आवश्यक थी, उसे ब्रिटिश सरकार समाज में पैदा करने में सफल नहीं हो सकी।

2. **आर्थिक कल्याण के क्षेत्र में :–**

महिलाओं की सम्पति से अधिकारिता को अस्वीकार करने के कारण ही भारतीय महिलाओं की स्थिति काफी दयनीय रही है। इसे स्वीकार करते हुए 1874 में The Married Womans Property Act लागू किया गया। जिसके तहत विवाहित महिलाओं को वेतन एवं कमाने हेतु कोई भी पेशा चयन करने का अधिकार दिया गया। दहेज जो एक आर्थिक आधारित सामाजिक कुरीति है, जिसके विरोध में कई सामाजिक और सामुदायिक संगठन प्रयास कर रहे थे परन्तु इसपर कोई रोक लगाने में बहुत सफलता नहीं मिली। देवदासी प्रथा जो सामान्तया दक्षिण भारत में व्याप्त थी। 1881 के जनगणना के अनुसार मद्रास प्रेसिडेन्सी में 11,573 देवदासियाँ थी। इसका मिशनरियों के द्वारा कड़ा विरोध किया जा रहा था। इसके कारण IPC की धारा 372 एवं 373 द्वारा इसे प्रतिबन्धित किया गया था। बहुविवाह एक अन्य सामाजिक कुप्रथा थी। राजाराम मोहन राय, दयानंद सरस्वती एवं ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने इसके विरूद्ध आंदोलन चलाया।

महिलाओं में पिछड़ेपन और सामाजिक बुराईयों की जड़ में शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण कारण था। भारतीय समाज में पर्दा प्रथा, बाल विवाह, जैसी सामाजिक बुराईयों के कारण महिलाओं की शिक्षा को लेकर काफी समस्याएँ थीं। स्त्रियों की अशिक्षा को दूर करने के लिए भारतीय समाज सुधारकों, इसाई मिशनरियों के साथ ब्रिटिश सरकार ने भी प्रयास किए। ब्रिटिश शासकों ने महिला शिक्षा के सम्बन्ध में प्राचीन काल से चली आ रही व्यवस्था को ही जारी रखा और महिलाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में वैसे विषयों का चयन किया गया, जो महिलाओं के लिए ज्यादा उपर्युक्त हो। जैसे साफ–सफाई, स्वच्छता, घरेलू विज्ञान, गीत संगीत, गृह विज्ञान आदि।

1854 के वुड डिस्पैच में महिला शिक्षा पर गंभीरता पूर्वक विचार किया गया और महिलाओं को शिक्षित करने के लिए सरकार ने जवाबदेही ली। 1882 में हंटर कमीशन ने महिला शिक्षा के लिए नए बालिका स्कूल की स्थापना हेतु कोष उपलब्ध कराने, महिला शिक्षकों की नियुक्ति बालिकाओं के लिए कारिकुलम, विशेष हॉस्टल आदि की सिफारिशें की। सरकार की इस सक्रिय भूमिका और स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रभाव के कारण महिला शिक्षा में वृद्धि हुई। 19वीं सदी के अन्तिम दो दशकों में उच्च शिक्षा में स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाया जा सका। 1883 में दो भारतीय महिलाएँ गेजुएट हुई। 1904 में मद्रास प्रेसिडेंसी में तीन डिग्री कॉलेज की स्थापना की गई। इन्स्टीट्यूट फार गर्ल्स त्रिवेनबेलम कान्वेंट कॉलेज मद्रास की स्थापना की गई। विरसे सिंगम ने वयस्क महिलाओं के लिए दिवा कॉलेज स्थापित किया। महिलाओं के स्वतंत्रता एवं जागरूकता के लिए अमृत वर्षनी, सुगना बोधनी, महारानी, माथर मैत्री जैसी पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई। जिनके द्वारा महिलाओं से सम्बन्धित विषयों पर लेख प्रकाशित कर जनजागरूकता फैलाने का कार्य किया गया।

3. **महिलाओं का समान अधिकार हेतु आंदोलन** :

पश्चिमी उदारवादी विचारों का प्रभाव महिलाओं पर भी पड़ा और उन्होंने अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाना आरंभ किया। ऑल इण्डिया विमेन एशोसिएशन 1907 और ऑल इण्डिया विमेन कॉन्फ्रेन्स 1917 में इसकी शुरूआत की गई। मारग्रेट कॉसीन, ऐनी बेसेन्ट, सरोजनी नायडू, विजयालक्ष्मी पंडित जैसी महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाना शुरू किया। भारत महिला परिषद जो 1887 में कांग्रेस के द्वारा स्थापित की गई थी, ने भी समान अधिकार हेतु आन्दोलन चलाया। महत्वपूर्ण महिला संगठनों ने भी महिलाओं के उत्थान के लिए काफी प्रयास किए। मद्रास पहला राज्य रहा जिसमें महिला एंव बाल विवाह हेतु अलग विभाग की स्थापना की गई। इसने भारत के अन्य राज्यों में महिला कल्याण विभाग की स्थापना को प्रेरित किया, इसी के प्रयास से दूसरे विश्व युद्ध के अन्त Women's Auxulary ARPCORPS की स्थापना की गई। बाद में इसे Indian Women's Civil Crop के रूप में पुनर्गठित किया गया।

4. **स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका** :

19वीं सदी के उत्तर्राद्ध में जब आधुनिक राष्ट्रवाद का विकास हुआ, तो इसने भी महिलाओं का प्रश्न घरेलूपन की इन्हीं संकुचित सीमाओं के अंदर उठाया। सुधारवाद की जगह जब राष्ट्र की विभिन्न मूर्ति समान प्रस्तुतियों ने ली, तो हिंदू महिला उस नैतिक व्यवस्था की आदर्श मूर्ति बन गई, जो भारत की आत्मा की प्रतीक थी और माना जाने लगा कि वह पश्चिम के प्रदूषक प्रभाव से मुक्त थी। पार्थ चटर्जी का तर्क है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की राष्ट्रवादी प्रस्तुति ने उनको भौतिक/अध्यात्मिक द्विभाजन के समकक्ष बना दिया। "**संसार**" अर्थात् सार्वजनिक क्षेत्र, जो खास तौर पर पुरूषों का क्षेत्र था, आधुनिकता ला रही उपनिवेशी राजसत्ता से टकराव और वार्त्ता का क्षेत्र था, जबकि "घर" प्रभुसत्ता का आंतरिक क्षेत्र था, जो उपनिवेशीकरण से परे था और जहाँ महिलाओं को भारत की राष्ट्रीय पहचान के आध्यात्मिक तत्व की रक्षक और पोषक समझा जाता था।

राष्ट्रीय चेतना की जागृति और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सिर्फ पुरूषों का ही नहीं अपितु इस महायज्ञ में महिलाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस महासंग्राम में पुरूषों ने कंधा से कंधा मिलाकर अंग्रेजों के विरूद्ध अपनी वीरता, साहस एवं नेतृत्व का अभूतपूर्व परिचय दिया है। वहीं रानी लक्ष्मीबाई और रानी चेनम्मा जैसी वीरंगनाओं ने अंग्रेजों से लड़ते हुए अपनी जान गवा दी, तो सरोजनी नायडु और लक्ष्मीबाई सहगल जैसी कई अन्य वीरंगनाओं ने आजादी के बाद भी देश की सेवा की है। कांग्रेसी नेता चितंरजन दास की पत्नी, बहन और भतीजी ने दिसंबर में कलकत्ता की सड़कों पर खुलेआम प्रदर्शन में भाग लेकर गिरफ्तारी दिया, वहीं देश के दूसरे भागों में मध्यम वर्गीय महिलाओं ने भी सड़क पर उतरकर अंग्रेजों के दमनात्मक रवैयों के खिलाफ जौरदार नारेवाजी कर अपनी सक्रिय भूमिका अदा की। इसके अलावे–उषा मेहता, दुर्गाबाई देशमुख, अरूणा आसफ, सुचेता कृपलानी, विजयालक्ष्मी पंडित, कमला नेहरू, सरोजनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, मेडम भीकाजी कामा, ऐनी बेसेंट, बेगम हजरत महल, डॉ0 लक्ष्मी सेहगल एवं सिस्टर निवेदिता जैसी कई महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई। परन्तु जैसा कि हम देखते हैं 20वीं सदी के आरम्भिक वर्षो के राष्ट्रवादी संवाद में अगर महिलाओं के मुद्दे नहीं उठे, तो उसका कारण यही था कि मुक्ति के दूसरे सभी रूपों को राष्ट्रीय मुक्ति पर आधारित समझा जाता था। मुसलमानों में भी महिला से संबंधित 20वीं सदी के आरंभिक वर्षो में एक नए "**नारीवाद**" उर्दू साहित्य का उदय हुआ। जिसके अंतर्गत 1919–20 के खिलाफत आंदोलन में मुस्लिम महिलाओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया।

राष्ट्रीय आंदोलन में गाँधीजी के आगमन के बाद स्त्रियों की भागीदारी स्वतंत्रता के आंदोलन में और सक्रिय हो गयी, इन्होंने यौनवृत्ति को नकारकर मातृत्व की बजाय बहनापे (Sisterhood) की और ध्यान को केन्द्रित किया। इन्हीं के आगमन के बाद पर्दा प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा, शिक्षा जैसे सवालों के साथ–साथ खिलाफत, असहयोग, स्वदेशी, नमक सत्याग्रह/डांडी मार्च, साइमन कमीशन और खादी आंदोलन में महिलाओं ने अपनी सक्रिय भूमिका अदा की। इस दौरान हजारों महिलाओं ने सड़क पर उतरकर एवं धरना प्रदर्शन कर विदेशी कपड़ों की होली जलायी एवं शराब की दुकानों को नष्ट किया। सबसे ज्यादा संगठित आंदोलन की गंभीरता मुम्बई, बंगाल एवं मद्रास में रही। वहीं उत्तर भारत में इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली और लाहौर जैसे शहरों में राष्ट्रवादी प्रदर्शन में खुलेआम सैकड़ों महिलाओं ने रूढ़ीवादी पुरूषों का मुँहतोड़ जवाब दिया।

निष्कर्ष :

महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार के गंभीर प्रयास 19वीं सदीं के उत्तरार्द्ध में भारतीय समाज सुधारकों द्वारा आरम्भ हुआ। शुरू में ब्रिटिश सरकार ने इस दिशा में कोई रूचि नहीं दिखाई परन्तु भारतीय समाज सुधारकों द्वारा दवाब डालने पर ब्रिटिश सरकार कुछ सक्रिय हुई और सामाजिक बुराईयों से सम्बन्धित कुछ कानून

पारित किए गए और उसे दण्डनीय अपराध बना दिया गया। महिला शिक्षा की दिशा में भी कुछ प्रगति हुई एवं स्कूल और कॉलेजों की स्थापना की गई। 20वीं सदी महिला सुधारों की दिशा में महत्वपूर्ण रहा। महात्मा गाँधी के आह्वान पर बड़ी संख्या में महिलाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया, जिससे उनमें राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जागृति आई। वर्त्तमान समय में महिलाओं की स्थिति में काफी बदलाव आया है। परन्तु अभी भी वे अनेक स्थलों पर पुरूष मानसिकता से पीड़ित हो रही हैं। यद्यपि महिला सशक्तीकरण की दिशा में सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा प्रयास किया जा रहा है। परन्तु अभी भी इस दिशा में बहुत प्रयास किया जाना बाकी है।

संदर्भ साहित्य :

ख1, विपिन चन्द्र, भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2000।
ख2, कमलेश्वर कुमार गुप्ता, महिला सशक्तीकरण, बुक इन्क्लेव, जयपुर।
ख3, सुरेश लाल श्रीवास्तव, राष्ट्रीय महिला आयोग, कुरूक्षेत्र, 2007।
ख4, भारती राम, भारतीय महिलाओं पर निबन्ध, 1965।
ख5, कुकुम सांग्री एवं सुरेश वैध, महिलाओं में बदलाव, भारतीय औपनिवेशिक इतिहास के संबंध में।
ख6, मोहन दास करमचंद गाँधी, वीमेंस एण्ड सोशल इनजस्टिस, अहमदाबाद, 1954।
ख7, कुसुमलता केडिया, इक्कसवीं सदीं की स्त्री और महात्मा गाँधी सर्वसेवा संघ प्रकाशन, बाराणसी, 1984।
ख8, प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, नई दिल्ली, 1994।
ख9, झारखण्डे चौबे एवं कन्हैया लाल श्रीवास्तव, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, लखनऊ, 1979।
ख10, गोपी जोशी, भारत में स्त्री असमानता : एक विमर्श, दिल्ली।
ख11, कृष्णन राजन, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाएँ, नई दिल्ली, 1999।
ख12, अजय कुमार श्रीवास्तव, राजा राम मोहन राय और सामाजिक परिवर्त्तन, वाराणसी, 2002।
ख13, अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, नई दिल्ली, 1977।
ख14, नीरा देसाई, वूमेन इन मार्डन इंडिया, बाम्बे, 1957।